ISSN 2231-5063 Impact Factor : 4.6052 (UIF) Volume - 6 | Issue - 3 | September - 2016

GRT

Golden Research Thoughts

बौद्ध धर्म का आयुर्वेद पर प्रभाव (सन्दर्भ :बौद्ध ब्रह्मविहार और आयुर्वेदीय वैद्यवृत्ति)

डॉ. बालाजी पोटभरे
प्रभारी अनुसन्धान अधिकारी, हर्बल आयुर्वेद अनुसन्धान केंद्र, नागालैंड विश्वविद्यालय, लुमामी, नागलैंड,

प्रस्तावना :

बौद्ध धर्म के प्रभाव के बारें में कहा जाता है कि, "क्या हिंदूधर्म, क्या ईसाइयत, क्या इस्लाम, क्या जापान के ताओ और शिन्तोधर्म सभी किसी न किसी मात्रा में बौद्ध धर्म से प्रभावित है |"[1] आयुर्वेद के आचार्य यह नहीं मानते है कि बौद्ध धर्म का आयुर्वेद पर प्रभाव है और वे यही सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते है कि बुद्ध के आविर्भाव से पहले वैदिक साहित्य की रचना पूरी हो चुकी थी | आखिर इसका कारण क्या है ? कहीं ये तथागत बुद्ध की मानवतावादी, वैज्ञानिक शिक्षा का विकृतीकरण तो नहीं है ? "भगवान बुद्ध की सारी शिक्षा स्वानुभुतियो पर आधारित है, "शास्त्र वचन प्रमाण" की अन्ध मान्यता पर आधारित नहीं है |"[2] अपने देश में वैज्ञानिक, तार्किक सोच से अधिक महत्व आस्था, श्रद्धा को दिया जाता है | श्रद्धा से सिद्धान्तों की उत्पत्ति नहीं होती है | "जब श्रद्धा तर्क का साथ छोड़ देती है, तब यह मिथ्या विश्वास बन जाती है और इस से भी बढकर बुराई तब पैदा होती है, जब श्रद्धा स्पष्ट तौर पर विरोधी बातों का पक्ष ग्रहण करती है |"[3] भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ वेद है | 'विद्' धातु से करण और अधिकरण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय होने पर 'वेद' शब्द बनता है | विद् धातु के चार अर्थ है– विद् ज्ञाने, विद्लृ लाभे, विद् सत्तायाम् , विद् विचारणे | अतः जिसके अध्ययन से अथवा जिसमें यथार्थ विद्या का ज्ञान होता है, समस्त सुखों का लाभ होता है, सत्य –असत्य का विचार होता है तथा जिसमें मनुष्य विद्वान होते है , उसे वेद कहते है |वेदों की संख्या चार मानी गई हैं और उनके चार उपवेद मानते हैं जैसे- ऋग्वेद:-धनुर्वेद,यजुर्वेद:-स्थापत्यवेद, सामवेद:-गान्धर्ववेद, अथर्ववेद:- आयुर्वेद | आयुर्वेद को दर्शनशास्त्र के साथ साथ चिकित्साशास्त्र भी कहते है | भारत में मुख्यतः छः आस्तिक दर्शन (जैसे सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा) और तीन नास्तिक दर्शन (जैसे चार्वाक, जैन और बौद्ध) हैं | सभी दर्शनशास्त्रों का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है | आयुर्वेद में भी कहा है कि "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् |" च.सु. 1/15

आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, और अष्टांगसंग्रह है |चरकसंहिता में कहा कि, "ऐतिहासिकों का सुनिश्चित मत हैं कि भगवान बुद्ध के आविर्भाव से पहले वैदिक वाङ् मय की संरचना पूर्ण हो चुकी थी | विदेशीय विद्वान विंटरनित्ज का मत हैं कि वेदों का समय २००० अथवा २५०० ई. पू. से ७५० ई. पूर्व के लगभग होना चाहिए | इस गणना के अनुसार उपनिषदों का समय १००० ई. पूर्व स्थिर किया जाता हैं और यही समय आचार्य अग्निवेश का भी स्वीकार किया जाता हैं |यद्यपि आयुर्वेद मानव–सृष्टि के आरम्भ से ही प्रादुर्भूत हुआ माना जाता हैं किन्तु युरोपीय इतिहासकारों ने आज से तीन – चार हजार वर्ष के पूर्व में भारत के अन्दर चिकित्साशास्त्र समुन्नत था, ऐसा स्वीकृत किया हैं क्योंकि उनके पास यहाँ के पूर्व के ऐतिहासिक तत्व उपलब्ध नहीं हैं | भारत से ही इस विद्या का प्रसार यूनान और युरोप आदि पाश्चात्य देशों में हुआ, यह भी ऐतिहासिक तथ्य हैं |"[4] आयुर्वेद के विद्वान् आचार्य, क्यों आयुर्वेद को मानव – सृष्टि के आरम्भ से ही प्रादुर्भूत हुआ मानते हैं ? क्या वे नही जानते थे कि अतिप्राचीन समय मानवी जीवन की शुरुआती दौर था और मनुष्य अपने मस्तिष्क के उपयोग के बारें में अनजान था | पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि, "3000-2600 ई. पू. मानव – जातिके बौद्धिक जीवन के उत्कर्ष नहीं अपकर्ष का समय हैं; इन सदियों में मानव ने बहुत कम नए आविष्कार किए |पहले की दो सहस्राब्दियोंके कड़े मानसिक श्रम के बाद 1000 – 700 ई. पू. में, जान पडता है, मानव – मस्तिष्क पूर्ण विश्राम लेना चाहता था, और इसी स्वप्नावस्थाकी उपज दर्शन हैं; और इस तरह का प्रारम्भ निश्चय ही हमारे दिल में उसकी इज्जत को बढाता नहीं, घटाता हैं | दर्शन का सुवर्णयुग 700 ई. पू. से बाद की तीन चार शताब्दियाँ हैं, इसी वक्त भारत में उपनिषद से लेकर बुद्ध तक के, और यूरोप में थेल से लेकर अरस्तु तक के दर्शनों का निर्माण होता हैं | यह दोनों दर्शन धाराएँ आपस में मिलकर विश्व की सारी दर्शन – धाराओंका उद्गम बनती हैं |"[5] हम स्वयं को प्राचीन समय में भारतवर्ष जगतगुरु होने से गौरवान्वित महसूस करते हैं, लेकिन वर्तमान स्थिति में हमारा स्थान जगत में क्या है ? भारतवर्ष अनगिनत मिथ्या विश्वासों का एक बगीचा बन गया है, जो रोज रोज वृद्धि पर है |

आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद मानते है - "इह खल्वायुर्वेदो नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्त्रमध्यायसहस्त्रकृतवान स्वयंभू:|" सु. सू. १|६ लेकिन अथर्ववेद की गणना वेदों में नहीं की जाती थी तथा उसे हीन दृष्टि से देखा जाता था और बुद्ध के समय में तो तीन ही वेद माने जाते थे, जैसा- पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि, "अथर्ववेद सबसे पीछे का वेद हैं | बुद्ध के वक्त (563 – 483 ई. पू.) तक वेद तीन ही माने जाते थे | सुपठित पंडित ब्राह्मण को उस वक्त "तीनों वेदों का पारंगत " कहा जाता था | अथर्ववेद "मारन – मोहन – उच्चाटन " जैसे तंत्र – मंत्र का वेद हैं |"[6]

इससे स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद भी बुद्ध के बाद की रचना है और कहीं हम बौद्ध चिकित्सा पद्धति को ही आयुर्वेद का नाम तो नहीं दे रहे हैं ? डॉ. एम्. एस. वालिअथान ने कहा है कि, "आयुर्वेद का प्रसार सम्पूर्ण भारत देश में हुआ था क्योंकि आखिर वह तो बौद्ध साहित्य था |"[7] तथागत बुद्ध के समय में आयुर्वेद उन्नत अवस्था में था, यह ऐतिहासिक सत्य है, जैसे -डॉ. एम्. एस. बघेल ने कहा है कि, "आयुर्वेद का प्रसार एशियाई देशों में मुख्यतः बौद्ध भिक्षुओं द्वारा हुआ है |"[8] यह कैसे सम्भव हो सकता है कि बौद्ध भिक्षु आयुर्वेद का प्रसार करें? वे तो बौद्ध साहित्य तथा बुद्ध के विचारों के प्रचारक थे, इसलिए, क्या हम यह कह सकते है कि आयुर्वेद जगत अज्ञानवश बौद्ध चिकित्सापद्धिति को ही आयुर्वेद मान रहा है | यह भी एक सच्चाई है कि, "जिन जिन देशों में भी बौद्ध धर्म फैला है, बौद्ध भिक्षु ही सभ्यता के अग्रदूत और विद्या केंद्र साबित हुए है | मध्ययुग में विद्या केन्द्रों के रूप में और कोई भी दुसरे स्थान इतने प्रसिद्ध नहीं थे जितने नालंदा, वल्लभी, ओदन्तपूरी और विक्रमशिला |"[9]

आयुर्वेद ने जितने भी मौलिक सिद्धान्त दर्शनशास्त्रों से उनके मूल अर्थ में परिवर्तन कर चिकित्सा के उद्देश्य से लिए है, वे सभी दर्शनशास्त्रों के मौलिक संकल्पनाएँ के अर्थों का अनर्थ करना है और एक तरह से मिथ्या ज्ञान को उत्पन्न करना सिद्ध होता है,जैसे- बौद्ध दर्शन में चार ब्रह्मविहारों का प्रतिपादन चालीस प्रकार के ध्यान मार्गो में से एक ध्यान मार्ग के व्यापक अर्थ में आया है तथा जिसका अन्तिम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति करना है जबकि आयुर्वेद के चरकसंहिता में उसका प्रतिपादन बहुत संकीर्ण अर्थ में चिकित्सा के चार पादों में से एक पाद वैद्य (भिषक) के वैद्यवृत्ति के रूप में आया है तथा बौद्ध ब्रह्मविहारों में से एक मुदिता के जगह पर प्रीति शब्द का प्रतिपादन किया गया है; जैसे- मैत्री, करुणा, प्रीति और उपेक्षा ये केवल वैद्य के ही गुण होते है, परिचारक (उपस्थाता) और रोगी के लिए ये चार गुण नहीं बतलाये गए है |

चरकसंहिता में चार वैद्यवृत्ति जैसे- "मैत्रीकारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षनम | प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा|" च.सू.९|२६

१. मैत्री :- प्राणियों के प्रति मित्रता का भाव रखना |
२. करुणा:- आर्तेषु ,रोगियों में कारुण्य (दयालुता)
३. प्रीति :- शक्ये (साध्य रोग शमन), (चिकित्सा हेतु स्नेह दिखलाना) और
४. उपेक्षा :- प्रकृतिस्थेषु भूतेषु उपेक्षणम (असाध्य अथवा मरणासन्न रोगियों के प्रति उपेक्षाभाव) इस प्रकार चार वृत्तियाँ वैद्य की होती हैं |

उपरोक्त संकीर्ण अर्थ में चरकसंहिता में बौद्ध ब्रह्मविहारों का प्रतिपादन किया गया है | क्या इन गुणों से युक्त वैद्य रुग्ण की चिकित्सा करने में सफल होगा? आजकल वैद्यकीय व्यवसाय में सेवा का भाव कम और मेवा का भाव अधिक हो गया है; वैद्य की सेवा पैसा कमाने का एक व्यवसाय बन गया है, जिसमे ना मैत्री/ ना करुणा/ना प्रीति /ना उपेक्षा का भाव है | साध्य रोगों की चिकित्सा के प्रति स्नेह का भाव और असाध्य अथवा मरणासन्न रोगियों के प्रति उपेक्षा का भाव, यह आज के आधुनिक चिकित्सा के युग में कैसे सम्भव है ? क्योंकि आधुनिक चिकित्सा में बहुत कम व्याधियाँ हैं जिन्हें असाध्य कह सकते है और उनकी भी चिकित्सा के लिए अविरत प्रयत्नशुरू हैं | वर्तमान समय में ऐसा लगता है कि मैत्री/ करुणा/ प्रीति / उपेक्षा ये वैद्य की वृत्तियाँ कालबाह्य हो गयी हैं | इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध ब्रह्मविहारों का प्रतिपादन आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ चरकसंहिता में बहुत गलत तरीके से किया गया है | गलत ज्ञान अज्ञान से भी बहुत खतरनाक होता है |यह आश्चर्यजनक है कि आयुर्वेद के और दो प्रमुख ग्रन्थ अष्टांगसंग्रह और सुश्रुतसंहिता में जो वैद्य के गुण बतलाये गए हैं, वे चरकसंहिता से बिलकुल अलग हैं | सुश्रुतसंहिता में वैद्य के गुण कुछ इस प्रकार से बतलाये गए हैं –

"तत्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयङ्कृती | लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः || सु. सू. 34/19 प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान व्यवसायी विशारदः | सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक पाद उच्चते || सु. सू. 34/20

जिसने यथार्थरूप से शास्त्र के अर्थ को पढ़ा या समझा हो, स्वयं जिसने प्रथम औषध निर्माण तथा चिकित्सादि कर्म को देखा हो एवं फिर अपने आप रस –भस्मादि निर्माण व चिकित्सादि कार्य किया हो, जिसका हाथ लघु या हलका हो, एवं शुचि, शूरवीर, सर्व प्रकार की साधन सामग्री सज्ज रखता हो, जिसकी बुद्धि प्रत्युत्पन्न अर्थात सद्यः उचित निर्णय देनेवाली हो, बुद्धिमान, व्ययसाय करनेवाला, सर्व क्रियाओं में विशारद (दक्ष) तथा सत्य और तत्पर हो ऐसा मनुष्य भिषक कहा जाता है |"[10]

अष्टांगसंग्रह में वैद्य के गुण-"दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक | अं. सं. सु. 2/22

1. दक्ष – चतुर (अपने कार्य में कुशल)
2. स्तीर्थात्तशास्त्रार्थो – उपाध्याय से जिसने शास्त्र का अभ्यास भली प्रकार किया है |
3. दृष्टकर्मा – क्रियात्मक ज्ञान भली प्रकार से हो |
4. शुचि – शरीर और मन से पवित्र रहनेवाला |"[11]

क्यों, आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों के आचार्यों में मतभिन्नता दृष्टिगोचर होती है ? कहीं अष्टांगसंग्रह के रचयिता आचार्य वाग्भट का बौद्ध होना तो कारण नहीं है ? कविराज अत्रिदेव गुप्त ने कहा है कि "आचार्य वाग्भट बौद्ध था यह बात सूर्य की तरह स्पष्ट है | उसको ब्राह्मण या वेदवादी सिद्ध करने में युक्तियों की अपेक्षा मानसिक आग्रह ही मुख्य कारण है | कुछ लोगों की मान्यता है की ब्राह्मण या वेदवादी के बिना दूसरे व्यक्ति अच्छे काम नहीं कर सकते | परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है, ब्राह्मणेतर वर्णोंने तथा वैदिक धर्म से भिन्न धर्मोवालोंने भी चिकित्सा में दर्शन में तथा दूसरे विषयों में बहुत काम किया, उनका दिया ज्ञान आज भी इस देश की अमूल्य निधि है | इसलिये ब्राह्मण या वेदमतानुयायी न होने पर भी यदि वाग्भट ने यह अमूल्य ग्रन्थ बनाया हो, तो कोई नुकसान नहीं |"[12] सुश्रुतसंहिता पर भी बौद्ध धर्म का बहुत प्रभाव है | सुश्रुतसंहिता के उत्तरतन्त्र की रचना बौद्ध आचार्य नागार्जुन ने की है | तामिल समाजसुधारक पी.एल. नरसू ने कहा है कि, "भारतीय चिकित्साशास्त्र की उन्नत अवस्था का सर्व श्रेष्ठ समय वही था, जब बौद्धधर्म अपने शिखर पर था | हो सकता है कि प्राचीन ब्राह्मणों ने शरीरशास्त्र संबंधी कुछ आरंभिक ज्ञान उस समय प्राप्त किया हो जब वे यज्ञ- याग के लिए पशुओं कि चीरफाड करते थे | लेकिन चिकित्साशास्त्र का यथार्थ विकास उन सार्वजनीन अस्पतालों में हुआ जिन कि स्थापना सम्राट अशोक ने भारत के हर बड़े नगर में कि थी | भगवान बुद्ध का आदेश था कि जो मैरी सेवा करना चाहता है, वह रोगियों कि सेवा करे |प्रसिद्ध चरक संहिता के रचयिता चरक बौद्ध राजा कनिष्क के राज वैद्य थे | नागार्जुन ने आयुर्वेद विज्ञान को नया जीवन प्रदान किया | उसकी प्रतिभा और उसके पांडित्य के फलस्वरूप ही हमें सुश्रुत के परिवर्द्धित संस्करण कि प्राप्ति हुई है | सुश्रुत का अगला हिस्सा जो उत्तरतंत्र कहलाता है नागार्जुन के ही स्वतंत्र चिंतन और खोज का परिणाम है | एक सच्चे बौद्ध कि परंपरा का अनुकरण करते हुए नागार्जुन ने बिना किसी भेद- भाव के सभी को आयुर्वेद का शिक्षण दिया | आज आयुर्वेद के आरंभिक विद्यार्थियों द्वारा जिस ग्रन्थ का अध्यनन किया जाता है, वह वाग्भट भी एक बौद्ध कि ही रचना है | नागार्जुन ने ही अर्क निकालने की पद्धतियों की खोज की और इस प्रकार रसायन शास्त्र को बढ़ावा दिया | दिन्नाग और उनके शिष्य धर्मकीर्ति ने "प्रमाणों" पर लिखे अपने ग्रथों के माध्यम से भारतीय तर्कशास्त्र को नया बल दिया | वररुचि, जयादित्य, वामन और चंद्र ने व्याकरण संबंधी ग्रन्थ लिखे | व्यादी और अमरसिंह ने शब्द कोष तैयार किये | नालंदा के महान विश्वविद्यालय सदृश बौद्ध सभ्यता के केंद्र स्थानों में सभी विज्ञानों तथा कलाओं का अध्यनन होता था |"[13]

बौद्ध ब्रह्मविहार सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के अति आवश्यक है | ब्रह्म-विहार को एक उत्तम तरीके से जीवन जीने की कला कह सकते है |ब्रह्म-विहार शब्द दो पदों के योग से निर्मित है | इस ब्रह्म +विहार में, ब्रह्म का अर्थ है उत्तम या श्रेष्ठ और विहार का अर्थ है निवसन या विधा इस प्रकार उत्तम रीति से विहार करने की विधा ही ब्रह्म-विहार कही जाति है | यह विधा चार उदात्त गुणों से समन्वित है - मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्खा (उपेक्षा)| विहरन्ति ऐतेहिती विहारा,ब्रह्मुनो विहारा ब्रह्मविहारा || अर्थात जिन मैत्री, करुणा,मुदिता व उपेक्षा धर्मों द्वारा सत्पुरुष विहरण कर्ता है, उन्हें विहार कहते है | ब्रह्मविहार के चार अंग मैत्री, करुणा,मुदिता व उपेक्षा मानव जाति के लिए वरदान है | ये प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान रहते है | जरुरत है इस बात की कि इसे कैसे चेतना में लाया जाए |
बौद्ध साहित्य में प्रतिपादित ब्रह्मविहारों का अर्थ कुछ इस प्रकार से है–

1. “मेत्ता (मैत्री):

मेत्ता अर्थ मैत्री का अर्थ परहितकामता, हितेसिता, कल्याणकारिता आदि है | मेत्ता भावना एक जीव से दुसरे जीव में तथा इसी क्रम से संसार के समस्त चराचर जीव में आ जाती है |

2. करुणा:

करुणा ब्रह्मविहार का दूसरा अंग है | सामान्यतः करुणा का अर्थ दया होता है |
पर दुक्खे सति साधुनं ह्रदय कम्पनं करोति ति करुणा |
दुसरे के दुःखी होने पर जब मनुष्य का ह्रदय कम्पित हो उठता है, द्रवित हो उठता है, तो वह करुणा है |
किरियती का दुक्खितेसू करणवसेन पसारियतीति करुणा |
दुसरे के दुःख का विनाश करती है, वह करुणा है |

3. मुदिता :

मुदिता का अर्थ है आल्हाद, आनन्द, प्रफुल्लता आदि है |
विसुद्धिमग्ग में कहा गया है –मोदनमत्तमेवं वा तं ति मुदिता |
सर्व प्राणियों के विकास और प्रसन्नता की भावना ही मुदिता है |

1. उपेक्खा (उपेक्षा):

सभी प्रकार की स्थितियों में समभाव से रहने की इच्छा ही उपेक्षा है| उपेक्षा एक अर्थ समता भी होता है |
सब्बेसत्ता –कम्मस्सका अर्थात सभी व्यक्ति अपने अपने कर्म के धनी है | सभी कर्म के अनुसार फल भोगते है | इस प्रकार का विचार करके उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखती है | इसे ही उपेक्षा कहते है |

या सत्तेसू उपेक्खा उपेक्खाया उपेक्खयितत्तं |
उपेक्खाचेतो विमुत्ति अयं वुच्चति उपेक्खा ||”[14]

जिस प्रकार मैत्री का आलम्बन सभी प्राणी है, करुणा का आलम्बन दुःखीजन है, मुदिता का आलम्बन सुखीजन है, उसी प्रकार उपेक्षा का आलम्बन प्रकृति से मध्यस्थ मूढ़ प्राणी है | इसलिए उपेक्षा भावना का प्रारम्भ मध्यस्थ पुरुष से होना चाहिए |बौद्ध धर्म में जिस तरह से कहा है कि मैत्री भावना से व्यापाद का, करुणा से घृणा का, अरति अर्थात उच्चाटन का मुदिता से तथा राग का विनाश उपेक्षा भावना से होता है, क्या चरकसंहिता में प्रतिपादित वैद्य का मैत्री गुण व्यापाद का नाश करने में समर्थ है ? क्या वैद्य का करुणा गुण घृणा का नाश कर सकता है ? क्या वैद्य के प्रीति गुण से अरति और उपेक्षा गुण से राग का विनाश हो सकता है ? यह सम्पूर्ण जगत कार्य –कारणभाव की शृंखला से संचालित है | चरकसंहिता में केवल भ्रम पैदा करने के हेतु से वैद्य के चार गुणों के रूप मे बौद्ध धर्म से उनके चार ब्रह्मविहारों को गलत अर्थ में अपनाये गए है तथा इसे तथागत बुद्ध की शिक्षा का विकृतीकरण करना भी कह सकते हैं | इस तरह के बौद्ध शिक्षा के विकृतीकरण से क्या आयुर्वेद का प्रयोजन सफल हो सकेगा ? क्या, आयुर्वेद को विकृत बौद्ध चिकित्सापद्धति कह सकते है ?

बौद्ध साहित्य सुत्तनिपात में मैत्री सूत्र का वर्णन पालि भाषा में और उसका हिन्दी में वर्णन कुछ इस प्रकार है–

मेत्त(मैत्री)-सुत्तं:

“करणीयमत्थकुसलेन, यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च |
सक्को उजुच सुजूच, सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ||१ ||
सन्तुसक्को च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति |
सन्तिन्द्रियोच निपकोच, अप्पगब्भो कुलेसू अननुगिद्धो ||२||
न च खुद्दं समाचरे किञ्चि, येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं |
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ||३||
ये केचि पाणभुतत्थि, तसा वा थावरा अनवसेसा|
दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमा रस्सकाणुकथुला ||४||
दिट्ठा वा येव अद्दिट्ठा, ये च दुरे वसन्ति अविदूरे |
भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ||५||
न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचि नं कञ्चि ||
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ||६ ||
माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे ||
एवम्पि सब्बभुतेसू मानसं भावये अपरिमाणं ||७ ||
मेत्तं च सब्बलोकस्मि, मानसं भावये अपरिमाणं ||

उद्धं अधोच तिरियं च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं ||८||
तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो ||
एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ||९||
दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा, दस्सनेन सम्पन्नो ||
कामेसू विनेय्य गेधं, न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति||१०||
उपरोक्त पालि भाषा का हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित नुसार है---
सभी प्राणियों के प्रति मैत्री –भावना 'ब्रह्मविहार' कहलाता है |

शान्ति –पद की प्राप्ति चाहनेवाले, कल्याण –साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह ऋजु बने | उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो ||१||
वह संतोषी हो, सहज ही पोष्य हो और सादा जीवन बितानेवाला हो |उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों | वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो ||२||
ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करें, जिसके लिए दुसरे विज्ञ लोग उसे दोष दे | और इस प्रकार मैत्री करे- सब प्राणी सुखी हो, क्षेमी हों और सुखितात्मा हों ||३||

जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वाले जितने भी प्राणी है, वे सभी सुखपूर्वक रहें ||४-५||
एक दुसरे की वंचना न करे | कभी किसी का अपमान न करें |वैमनस्य या विरोध से एक दुसरे के दुःख की इच्छा न करे ||६||
माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर अपने एकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम –प्रेम भाव बढ़ावे ||७||
बिना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ावे ||८||
खड़े रहते, चलते, बैठते या सोते,जब तक जागृत रहे, तब तक इस प्रकार की स्मृति बनाये रहे | इसी को ब्रह्मविहार कहते हैं ||९||
ऐसा नर किसी मिथ्यादृष्टि में न पड़े, शीलवान हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त काम –तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ||१०||"[15]

चरकसंहिता में प्रतिपादित वैद्य के मैत्री गुण से क्या तृष्णा और पुनर्जन्म का नाश सम्भव है ? क्या वैद्य का मैत्री गुण बौद्ध साहित्य सुत्तनिपात में प्रतिपादित मैत्री गुण जैसा व्यापक हो सकता है? अगर व्यापक होता,तो शायद चरकसंहिता में ऐसा कभी नहीं प्रतिपादित किया होता कि, "स चाध्येतव्यो ब्राह्मणराजन्यवैश्य:| तत्रानुग्रहार्थं प्राणिनां ब्राह्मनै:, आराक्षार्थं राजन्य:, वृत्यर्थं वैश्य:|" च.सु. 30/29,

इसका अर्थ है -आयुर्वेद का अध्ययन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को करना चाहिए | प्राणियों के प्रति कृपा करने के लिए ब्राह्मणों को, क्षत्रियों को आत्मरक्षा तथा वैश्यों को आजीविका के लिए आयुर्वेद का अध्ययन करना चाहिए |"[16] इस सूत्र के अनुसार प्राणियों के प्रति कृपा करने के लिए ब्राह्मणों को आयुर्वेद का अध्ययन करना चाहिए, लेकिन ब्राह्मणों ने रोगी (उपस्थाता) और परिचारक के प्रति कृपा करने के लिए वैद्य के गुणों का प्रतिपादन रोगी (उपस्थाता) और परिचारक के लिए क्यों नहीं किया गया है? हिन्दू धर्म में चार वर्ण माने जाते हैं –ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र | प्रत्येक वर्ण को वैज्ञानिक आधार के बीना एक –एक अधिकार दिया गया था, जैसे ब्राह्मणों को अध्ययन का, क्षत्रिय को देश की रक्षा करने का, वैश्य को व्यापार करने का और शूद्रों को तीन सवर्णों की सेवा करने का | एक ही वर्ण के पास अध्ययन का अधिकार होने से, हो सकता है कि उसने केवल अपने लिए ही हितकर हो ऐसी संकीर्ण, स्वार्थी मानसिकता से साहित्य का निर्माण किया गया तथा जिसका आधार आस्था और श्रद्धा को माना गया | इसलिए शायद रोगी (उपस्थाता) और परिचारक के लिए वैद्य के चार गुणों का प्रतिपादन नहीं किया गया | साथ में यह भी एक चिंतन करने का विषय हैं कि आयुर्वेद का अध्ययन करने का अधिकार शूद्रों को क्यों नहीं दिया गया था? कहीं शूद्रों का मस्तिष्क तीन सवर्णों के मस्तिष्क से भिन्न तो नही था | क्या वे सवर्णों जैसे मनुष्य नहीं थे ? तो फिर क्यों, आयुर्वेद के निःस्वार्थी आचार्य, ऋषि, मुनियो नें यह भेदभाव की नीति अपनाई होगी ? क्यों, वे शूद्रों से आयुर्वेद का ज्ञान छुपाना चाहते थे ? शुद्र और आयुर्वेद का क्या आन्तरिक सम्बन्ध है ?

उपरोक्त जैसे, डॉ. एम्. एस. वालिअथान के कथन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध चिकित्सापद्धति को ही आयुर्वेद जगत अज्ञानवश आयुर्वेद का नाम दे रहा हैं तथा यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध भिक्षु ही बौद्ध चिकित्सापद्धति का रोगी लोगों के लिए उपयोग करते होंगे और ये सत्य है कि उस समय के बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध लोगों की गणना शूद्रों में की गया हैं | इसलिए, शायद आयुर्वेद के निस्वार्थी,त्यागी आचार्यो ने शूद्रों को आयुर्वेद का अध्ययन करने का अधिकार नहीं दिया ताकि यह सिद्ध न हो कि आयुर्वेद एक बौद्ध चिकित्सापद्धति है |आयुर्वेद के आचार्य/ऋषि/ मुनि के मन में अगर निःस्वार्थी, मानवतावादी, सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की भावना होती, तो शायद शूद्रों को भी आयुर्वेद का अध्ययन करने का अधिकार देते | आधुनिक विज्ञान जानता है कि सभी मनुष्य एक ही जाति के हैं, जैसे कहा गया है- "चातुर्वर्ण सम्बन्धी चर्चा मंद बुद्धि का द्योतक है | सभी आदमी एक ही जाति के है |"[17] बौद्ध धर्म तो मानवतावादी है, उसमें कहीं पर भी भेदभाव के लिए जगह नहीं है, वह तो इस चराचर सृष्टि का कल्याण चाहता है –सम्पूर्ण मानव जाती के निर्वाण की कामना करता है | आयुर्वेद को हिन्दू चिकित्सापद्धति भी कहते है | पी. लक्ष्मी नरसु ने कहा है- "जहाँ तक परोपकार वृत्ति का सम्बन्ध है, ब्राह्मणवाद इससे सर्वथा अपरिचित है | लेकिन बौद्धों में यह गुण विद्यमान है और इसके साथ उदारशयता तथा न्याय –प्रियता भी विद्यमान थी | इसलिए यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उच्चतर शीलसम्पदा की दृष्टी से आधुनिक शील के मुकाबले पर खड़ी की जा सकने वाली शील सम्पंदा बौद्ध धर्म के पास ही है| इतना ही नहीं बौद्ध धर्म की परोपकारवादिता सर्वोपरि है | इतना ही नहीं बौद्ध धर्म की प्रमुख विचारसरणी मैत्री है, सर्वत्र व्याप्त प्रेम |"[18] आयुर्वेद में चिकित्सा की दृष्टि से बौद्ध चार ब्रह्मविहारों का प्रतिपादन वैद्यवृत्ति के अर्थ में करना, यह दर्शाता है कि प्रकृत को विकृत करना तथा अर्थ को अनर्थ में में परिवर्तित करना |ऐसे विकृतिकरण से मनुष्य जाति की हानि होना तय है |आजकल शारीरिक व्याधियों की अपेक्षा मानसिक व्याधियों का प्रमाण बहुत अधिक है और आज भी बौद्ध ब्रह्मविहारों की आवश्यकता मानसिक व्याधियों से ग्रस्त मनुष्य जाति की चिकित्सा के लिए ही नहीं, बल्कि मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त होकर निर्वाण की प्राप्ति कर सकें इसके के लिए है | बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य है, जिनमें बौद्ध धर्म का सार निहित है, जैसे - दुःख – विश्व में सर्वत्र दुःख ही दुःख है |दुःख समुदय – दुःख उत्पन्न होने का मूल कारण तृष्णा है |दुःख निरोध – दुःख निवारण के लिये तृष्णा को नष्ट करना अनिवार्य है |दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा – दुःख के मूल अविद्या के नाश के लिये अष्टांगिक मार्ग (अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्ति, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि) है |

यह एक सच्चाई है- "धर्मिता और करिश्में ईसाइयों के लिए बुद्धिमत्ता है, किस्मत और धर्मान्धता मुसलमानों के लिए बुद्धिमत्ता है, जातीपातीं और कर्मकांड ब्राह्मणों के लिए बुद्धिमत्ता है, कायक्लेश तथा नंगापन जैनों के लिए बुद्धिमत्ता है, प्रेम और पवित्रता बौद्ध के लिए परं बुद्धिमत्ता है |"[19]

आजकल युरोप और अमरीका के विचारशील लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हो रहें हैं |बौद्ध धर्म के प्रभाव के बारें में पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि "विक्रम संवत (५७ ई. पू.), ईसवी सन या शक संवत (७८ ई.) के शुरू होने के साथ तीन शताब्दियों के विचार – संघर्षों की धुन्ध फटने लगती हैं , और उसके बीचसे नई धारा निकलती हैं | पेशावर में जो इस वक्त भारत के महान सम्राट कनिष्क की राजधानी ही नहीं हैं , बल्कि पूरब (चीन), पश्चिम (ईरान और यूनान)तथा अपने (भारत के) विचारों के सम्मिश्रण से पैदा हुए नए प्रयोग की नाप – तोल हो रही हैं | अश्वघोष संस्कृत काव्य गगन में एक महान कवि और नाट्यकार के रूप में आते हैं | इस्सी समय के आसपास गुणाढ्य अपनी बृहत्कथा लिखते हैं | चरक एक परिष्कृत आयुर्वेद का सम्पादन करते हैं | बौद्ध सभा बुला अपने त्रिपिटक पर नए भाष्य (=विभाषा) तैयार करवाते हैं | उनके

दर्शन में विज्ञानवाद , शून्यवाद , बाह्यार्थवाद (=सौत्रान्तिक) और सर्वार्थवाद की दार्शनिक धाराएं स्पष्ट होने लगती हैं | लेकिन इस वक्त की कृतियाँ इतनी ठोस न थी, की काल के थपडोंसे बच रहती, न वह इतनी लोकोत्तर थी कि, धार्मिक लोग बड़ी चेष्टा के साथ उन्हें सुरक्षित रखते | दर्शन का नया युग नागार्जुन से आरम्भ होता हैं |”[20]

उद्देश :

1.बौद्ध धर्म की मौलिक शिक्षाओं के बारें विशेषतः ब्रह्मविहारों के बारें में जानकारी प्राप्त करना और उसका आयुर्वेद पर प्रभाव संक्षिप्त में विवेचन करना ।

2. चरकसंहिता में वर्णित वैद्यवृत्ति और बौद्ध ब्रह्मविहार की संकल्पना का विवेचन करना ।

महत्व :

आयुर्वेद के मौलिक सिद्धांत भारतीय दर्शनशास्त्रों पर आधारित है, इसलिए जब तक हमें भारतीय दर्शनशास्त्रों का ज्ञान नहीं होता, हम स्वयं को आयुर्वेद के ज्ञानी कैसे कह सकते है ? आयुर्वेद के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. दिलीप गाडगील ने कहा है कि, ‘अगर हमें आयुर्वेद को अच्छी तरह से समझना है, तो पहले भारतीय दर्शनशास्त्रों का ज्ञान होना बहुत जरुरी है |’ इस शोध प्रबंध की आवश्यकता इसलिए है कि जिस अर्थ में कोई संकल्पना का प्रतिपादन दर्शनशास्त्रों में आया है, उसी अर्थ में उसका प्रतिपादन आयुर्वेद में नहीं किया गया है और इसके लिए यह कारण दिया जाता है कि आयुर्वेद एक चिकित्साशास्त्र है और उसके प्रयोजन पूर्ति के लिए इस तरह के परिवर्तन किये गए है | लेकिन प्रश्न यह है कि इस तरह के परिवर्तन करने से, क्या आयुर्वेद का प्रयोजन सफल हो रहा है? यह भी सत्य है कि अगर आयुर्वेद का प्रयोजन सफल होता, तो शायद आज का विकसित आधुनिक विज्ञान आयुर्वेद के सामने एक चुनौती के रूप में खड़ा न हुआ होता | तथागत बुद्ध ने बहुत यथार्थ कहा था - “पुराने समय से चली आ रही होने के कारण ही किसी बात में विश्वास मत करो, किसी बात को इसलिये भी स्वीकार मत करो की उसे बहुसंख्यक लोग मानते है, किसी बात को इसलिये भी मत स्वीकार करो की वह किसी धर्मग्रन्थ में लिखी है | किसी बात को इसलिये भी स्वीकार न करो की वह असाधारण प्रतीत हो, बल्कि उसे अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसो और जब ऐसा लगा की वह तुम्हारे लिए और सभी के लिए हितकर है तो उसे स्वीकार करो और अपने जीवन में उतारो |”[21]

निष्कर्ष :

बौद्ध धर्म का आयुर्वेद पर बहुत गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है | ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं हम बौद्ध चिकित्सापद्धति को ही आयुर्वेद का नाम तो नहीं दे रहें हैं ? अगर आयुर्वेद को यथार्थ रूप से जानना हैं, तो बौद्ध साहित्य का अध्ययन करना बहुत आवश्यक हैं | आयुर्वेद ने जितने भी मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर गलत अर्थ में स्वयं के प्रयोजन के लिए किये गए हैं उनको तथागत बुद्ध की वाणी से ही समझना होगा तभी इस चराचर सृष्टि का कल्याण सम्भव है | आयुर्वेद में बौद्ध शिक्षा को ब्रह्मविहारों के सन्दर्भ में विकृतीकरण किया गया हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि आयुर्वेद बौद्ध चिकित्सापद्धति का विकृत स्वरुप तो नहीं हैं ? कहीं ये बौद्ध धर्म पर हमला तो नही है, जैसे- श्री रामशरण शर्मा ने कहा है कि, “ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में ब्राह्मण मूलग्रंथों ने बौद्ध धर्म की शिक्षा को धार्मिक रंग दे दिया और बौद्ध धर्म की चुनौती का मुकाबला करने के लिए ब्राह्मणों ने अपने धर्म को सुधारा|”[22] मिथ्या ज्ञान के सहारे हम आधुनिक विज्ञान के चुनौतियों का सामना नहीं कर सकते | पी. लक्ष्मी नरसु ने कहा है कि, “बुद्धके उपदेश स्वानुभूत हैं | स्वानुभूत बातें ही सर्वाहितकारी एवं सर्वसुखकारी हो सकती है | सर्वाहितकारी एवं सर्वसुखकारी बातें ही मानव जीवन की उन्नति में सहाय्यक हो सकती है | ऐसे बुद्ध के उपदेशों से एकता, मानवता एवं सौमनस्य अवश्यंभावी है | ये बुद्धोपदेश एकदेशीय नहीं है, एककालिक नहीं है, किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं हैं अपितु सर्वदेशीय, सर्वकालिक एवं विश्वजनीन हैं | इसलिए तथागत बुद्ध का मानवतावादी विचार आज भी दीर्घकाल के अन्तराल में विश्व के कोने –कोने में गुंजायमान है |”[23]

सन्दर्भ :

1. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 59-60.
2. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 17.
3. वही, पृष्ठ 17.
4. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता (भाग १), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 10.
5. पण्डित राहुल सांकृत्यायन, दर्शन – दिग्दर्शन, Archaeological Library: Accession No. 7228, Call No. 109/SanCentral Archaeological Library, New Delhi, pp12-13 &419-420.
6. पण्डित राहुल सांकृत्यायन, दर्शन – दिग्दर्शन, Archaeological Library: Accession No. 7228, Call No. 109/San, Central Archaeological Library, New Delhi, पृष्ठ 539.
7. M.S.Valiathan, Ayurvedic Inheritance of India, Lec.2, www. textofvideo.nptel.iitm.ac.in/121106003/lec3.pdf
8. Baghel,M.,S.,GlobalizationofAyurveda,www.iaf-ngo.org/.../Ayurvedic%20education%20in%20foreign%20countries
9. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 59-60.
10. कविराज डॉ.अम्बिकादत्तशास्त्री,(2013), सुश्रुतसंहिता(पूर्वार्ध –प्रथम भाग), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी (2013)पृष्ठ 168.
11. कविराज अत्रिदेव गुप्त, (2005), अष्टांगसंग्रह (भाग १), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी. पृष्ठ 17.
12. कविराज अत्रिदेव गुप्त, (2005), अष्टांगसंग्रह (भाग १), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी. पृष्ठ 11-12.
13. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 13-15.
14. Tripathi, R. Universal Message of Buddhist Tradition (With special reference to pali literature) pali study series 1, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, pp.393-394.
15. डॉ.भिक्षु धर्मरक्षित,(2010), सुत्तनिपात, मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ 36-37.

16. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता (भाग १), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 207.
17. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिज्म(बौद्ध धर्मं का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 128.
18. वही, पृष्ठ 175.
19. वही, पृष्ठ 175.
20. पण्डित राहुल सांकृत्यायन, दर्शन – दिग्दर्शन, Archaeological Library: Accession No. 7228, Call No. 109/SanCentral Archaeological Library, New Delhi, pp.601-602.
21. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिज्म(बौद्ध धर्मं का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 37.
22. रामशरण शर्मा, (2015), प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरिएंट ब्लैकस्वाँन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 141.
23. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिज्म(बौद्ध धर्मं का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 399.

कृतज्ञता: मैं,आदरणीय महानिदेशक,केन्द्रीय आयुर्वेदीय विज्ञान अनुसन्धान परिषद,नई दिल्ली, इनके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और उनके मार्गदर्शन और सहाय्यता के लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. बालाजी पोटभरे
प्रभारी अनुसन्धान अधिकारी, हर्बल आयुर्वेद अनुसन्धान केंद्र नागालैंड विश्वविद्यालय, लुमामी, नागलैंड,